इकाई 19 मार्क्सवादी तथा सबाल्टर्न*

इकाई की रूपरेखा

19.0 उद्देश्य

19.1 प्रस्तावना

19.2 मार्क्सवादी इतिहासलेखन के प्रमुख विचार

19.3 कुछ महत्वपूर्ण मार्क्सवादी इतिहासकार

19.3.1 आर. पी. दत्त

19.3.2 डी. डी. कोसांबी

19.3.3 बिपन चंद्र

19.3.4 इरफ़ान हबीब

19.4 सबाल्टर्न इतिहासलेखन की प्रमुख विशेषताएँ

19.5 कुछ महत्वपूर्ण सबाल्टर्न इतिहासकार

19.5.1 रणजीत गुहा

19.5.2 पार्था चटर्जी

19.5.3 ज्ञानेंद्र पांडे

19.5.4 दीपेश चक्रवर्ती

19.6 सारांश

19.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

19.8 संदर्भ ग्रंथ

19.9 शैक्षणिक वीडियो

19.0 उद्देश्य

इस इकाई में हमारा मुख्य उद्देश्य आप को मार्क्सवादी और सबाल्टर्न इतिहासलेखन के प्रमुख विचारों से परिचित कराना है, इतिहासलेखन की इन दो महत्वपूर्ण धाराओं से संबंध रखने वाले कुछ महत्वपूर्ण इतिहासकारों की कृतियों का संदर्भ देने के साथ। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जानेंगेः

- भारत में मार्क्सवादी इतिहासलेखन के आधारभूत विचारों के विषय में,
- कुछ प्रमुख भारतीय मार्क्सवादी इतिहासकारों की कृतियों तथा उनके विचारों के विषय में,
- सबाल्टर्न इतिहासलेखन की प्रमुख विशेषताओं के विषय में, और
- इतिहास और इतिहासकारों की सबाल्टर्न विचारधारा से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण इतिहासकारों के मतों के विषय में।

19.1 प्रस्तावना

भारत में मार्क्सवादी इतिहासलेखन का विकास प्राथमिक रूप से 1940 के दशक से शुरू हुआ। 1960 के दशक से लेकर 1990 के दशक तक इसकी भारतीय इतिहासलेखन के क्षेत्र में प्रभावशाली उपस्थिति रही है। बहुत से भारतीय इतिहासकार किसी न किसी रूप में इसके प्रभाव में आए। यहाँ हम इस प्रवृत्ति से संबंधित प्रमुख विचारों और कुछ महत्वपूर्ण इतिहासकारों की चर्चा करेंगे।

सबाल्टर्न इतिहासलेखन उस प्रवृत्ति की ओर इशारा करता है जिसकी शुरुआत सबाल्टर्न अध्ययन

* प्रो. शशि भूषण उपाध्याय, सामाजिक विज्ञान विद्यापीठ, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली

तथा इससे संबंधित इतिहासकारों के साथ हुई थी। 1980 के दशक के आरंभ में शुरू हुआ सबाल्टर्न अध्ययन कई संपादकों के अधीन प्रकाशित हुए लेखों की एक श्रृंखला है जिसकी शुरुआत रणजीत गुहा के साथ होती है जिन्होंने पहले छः संस्करणों को संपादित किया था। इस इकाई में हम इस प्रवृत्ति के विकास का वर्णन करेंगे तथा इसमें योगदान देने वाले कुछ प्रमुख इतिहासकारों को भी ध्यान में रखेंगे जिन्होंने कई पुस्तकें भी प्रकाशित की थीं।

19.2 मार्क्सवादी इतिहासलेखन के प्रमुख विचार

भारतीय इतिहास के अधिकतर ज्ञानक्षेत्रों में मार्क्सवादी इतिहासकारों की भूमिका अत्यंत महत्व की रही है, चाहे हम भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों पर नज़र डालें, जैसे प्राचीन, मध्यकाल या आधुनिक काल, या विभिन्न प्रकार के विषयों पर विचार करें, जैसे आर्थिक इतिहास, राष्ट्रवाद, राजनीतिक इतिहास या सामाजिक इतिहास। मार्क्सवादी इतिहासकारों ने इन सभी में विपुल योगदान दिया है। वस्तुतः कुछ अध्ययन-क्षेत्रों में उनकी कृतियों ने इतिहास लेखन की धारा को नई दिशा प्रदान की की है। यद्यपि मार्क्सवादी इतिहासकारों के बीच कई प्रकार की असहमतियाँ रही हैं तब भी कुछ निश्चित प्रकार के समान तत्व रहे हैं जो इस प्रकार हैं:

1) भले ही मार्क्सवादी इतिहासकारों द्वारा ठोस स्रोतों तथा अनुभवजन्य (empirical) सामग्री पर कार्य किया गया है, उन्होंने अपनी सामग्री के विश्लेषण और प्रस्तुतीकरण के लिए एक व्यापक दृष्टिकोण को अपनाया है।

2) यह व्यापक दृष्टिकोण सामान्यतः उत्पादन की पद्धतियों और विभिन्न वर्गों के बीच संघर्ष को ध्यान में रखता है।

3) इस प्रकार व्यापक सामाजिक-आर्थिक संरचनाओं, जैसे सामंतवाद, उपनिवेशवाद तथा पूँजीवाद, के अध्ययन को महत्व दिया गया।

4) मार्क्सवादी इतिहासलेखन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनों की व्यक्तिगत स्वरूपों/प्रतिमानों में व्याख्या नहीं करता है बल्कि सामाजिक-आर्थिक तंत्रों और वर्ग-संघर्षों के संदर्भ में उन्हें रेखांकित करता है। हम यह कह सकते हैं कि मार्क्सवादी इतिहास लेखन सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के बारे में 'महान् व्यक्ति' (great man) के सिद्धांत को खारिज करता है।

5) राजाओं और वंशों के इतिहास को सामाजिक और आर्थिक संरचनाओं के इतिहास तथा आमजन के इतिहास द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। परिणामतः राजनीतिक इतिहास के स्थान पर सामाजिक और आर्थिक इतिहास के अध्ययन पर अधिक ध्यान दिया गया।

6) प्रविधि के स्तर पर मार्क्सवादी इतिहासकारों ने अंतःविषय दृष्टिकोण व अभिगम (approach) को अपनाया जो पुरालेखागारों पर केंद्रित शोध को पुरातत्व विज्ञान, भाषा-विज्ञान, मानवविज्ञान, मुद्राशास्त्र, इत्यादि के साथ मिला कर देखता है।

7) मार्क्सवादी इतिहासलेखन में विश्लेषण, व्याख्या, कारणता/कार्य-करण सिद्धांत (causation) तथा विवेचन को सामान्य विवरण या वर्णन की अपेक्षा अधिक महत्व दिया जाता है।

19.3 कुछ महत्वपूर्ण मार्क्सवादी इतिहासकार

इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए की मार्क्सवादी इतिहासलेखन भारतीय इतिहासलेखन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति रही है, इससे संबंध रखने वाले इतिहासकारों की संख्या भी उतनी ही अधिक रही है। लेकिन, इस खंड में हम अपनी परिचर्चा को केवल चार इतिहासकारों तक सीमित रखेंगे।

19.3.1 आर. पी. दत्त

आर.पी. दत्त को भारत में मार्क्सवादी इतिहासलेखन की शुरुआत करने वाला कहा जा सकता है। उनकी पुस्तक *इंडिया टुडे*, जिसे मूलतः 1940 में लिखा गया था, उनके द्वारा भारत में ब्रिटिश शासन और भारतीय लोगों के संघर्ष, जिसमें राष्ट्रीय आंदोलन तथा कामगार वर्गों के आंदोलन, दोनों, शामिल थे, के विकास पर मार्क्सवादी विचार व दृष्टि से स्वतंत्रता की पूर्व-संध्या तक किया गया सर्वेक्षण है,

जैसा कि इसे उस समय देखा और समझा जाता था। इसमें औपनिवेशिक शासन के अधीन भारतीय अर्थव्यवस्था, राजनीति और समाज के विभिन्न पहलुओं पर व्यापक विचार किया गया है। यह पुस्तक मार्क्सवादी विश्लेषण का उपयोग औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में हुए परिवर्तनों, राष्ट्रवादी आंदोलन, संप्रदायवाद तथा कृषक वर्ग की समस्याओं को समझने में करती है।

भारत में औपनिवेशिक शासन के आर्थिक प्रभाव के विषय पर स्वयं मार्क्स की टिप्पणियों का अनुसरण करते हुए दत्त ने अपनी बात को उपनिवेशवाद को 'विध्वंसक' और 'निर्माणकारी', दोनों, प्रकार की शक्ति माना है। लेकिन, दत्त ने इस बात पर बल दिया है कि उपनिवेशवाद की निर्माणकारी भूमिका बहुत सीमित थी और बहुत जल्द ही यह ध्वंस में परिवर्तित हो गईः

> आज भारत में साम्राज्यवादी शासन की संपूर्ण विश्व में पूँजीवाद की तरह इसकी वस्तुनिष्ठ रूप से प्रगतिवादी और निर्माणकारी भूमिका समाप्त हो चुकी है जो मुक्त व्यापार वाले पूँजीवाद के काल के समानांतर है। और भारत में साम्राज्यवादी शासन सर्वाधिक शक्तिशाली प्रतिक्रियावादी शक्ति बन चुका है जिसने अन्य सभी प्रकार की भारतीय प्रतिक्रियावादी शक्तियों को और मज़बूत किया है।

दत्त प्रत्यक्ष तौर पर उपनिवेशवाद तथा पूँजीवाद को देश की गरीबी के लिए ज़िम्मेदार ठहराते हैं और औपनिवेशिक लूट की उस भूमिका पर बल देते हैं जिसने ब्रिटेन के पूँजीवादी विकास के लिए वित्त उपलब्ध करवाया था। आर्थिक कसौटी का उपयोग करते हुए वे भारत में साम्राज्यवादी शासन को तीन चरणों में बाँटते हैं। यह एक ऐसा काल-विभाजन था जो अब सामान्य रूप से स्वीकारा जाता है, विशेषकर मार्क्सवादी इतिहासकारों के बीच। इसका पहला चरण वाणिज्यिक पूँजी का था जिसका प्रतिनिधित्व ईस्ट इंडिया कंपनी करती थी और जिसकी व्यवस्था का सामान्य चरित्र 18वीं शताब्दी के अंत तक जारी रहा था। दूसरे चरण में औद्योगिक पूँजी का वर्चस्व था जिसने 19वीं शताब्दी में भारत के शोषण के नए आधार की स्थापना की। तीसरे चरण में वित्तीय पूँजी महत्वपूर्ण शक्ति बन गई जो 19वीं शताब्दी के आखिरी वर्षों में शुरू हुई और 20वीं शताब्दी में परिपक्व हुई।

वाणिज्यवादी पूँजीवाद के चरण में ईस्ट इंडिया कंपनी ने भारतीय व्यापार पर एकाधिकारवादी नियंत्रण का उपभोग किया। 1757 से बढ़ते जा रहे अधिक्षेत्रीय नियंत्रण के कारण यह और सरल हो गया था। इसके अलावा कंपनी के अधिकारियों द्वारा अपने निजी सामर्थ्य के अंतर्गत औपनिवेशिक सरकार द्वारा प्रत्यक्ष तौर पर भारतीय संपत्ति की लूट की गई।

इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति के साथ अंग्रेज़ी उद्योगों के उत्पादों के लिए स्वतंत्र बाजारों की खोज होने लगी। अब भारत को 'संपूर्ण विश्व के लिए सूती पण्यवस्तुओं के निर्यातक से सूती पण्यवस्तुओं के आयातक' के रूप में रूपांतरित कर दिया गया। इस प्रकार ईस्ट इंडिया कंपनी के एकाधिकारवादी नियंत्रण को समाप्त होना था और यह 1813 के बाद विभिन्न चरणों में हुआ और जिसने 1858 में पूर्णता पाई जब भारत का शासन ब्रिटिश ताज को हस्तांतरित कर दिया गया।

अंततः प्रथम विश्व युद्ध के बाद वित्तीय पूँजीवाद का नया चरण शुरू हुआ। अब भारत में प्रत्यक्ष पूँजी निवेश पर बल दिया जा रहा था। यद्यपि भारत से 'भेंट प्राप्त करने' (tribute) और भारत को ब्रिटिश वस्तुओं के बाज़ार के रूप में देखने के पुराने तरीके अब भी चलते रहे।

दत्त ने भारतीय राष्ट्रवाद पर भी मार्क्सवादी विश्लेषण का प्रयोग किया। 1857 के विद्रोह पर उनका विचार था कि यह मूलभूत रूप से 'पुरानी रूढ़िवादी और सामंतीय शक्तियों तथा बेदखल कर दिए गए राजाओं का विद्रोह' था। इस प्रकार वे भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की शुरुआत 19वीं शताब्दी के आखिरी उत्तरार्द्ध से ही मानते हैं।

उनके अनुसार इस आंदोलन का प्राथमिक संगठन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस (Indian National Congress) था जिसकी स्थापना 1885 में हुई थी। दत्त के अनुसार यद्यपि कांग्रेस भारतीय मध्यवर्ग की शुरुआती गतिविधियों से उदित हुई थी, इसे प्रभावशाली रूप से ब्रिटिश अधिकारियों की पहल पर एक सुरक्षा-यंत्र की तरह अस्तित्व में लाया गया था। दत्त ए. ओ. ह्यूम की भूमिका तथा होने वाले विद्रोह के प्रति उनकी सतर्कता के विषय में विस्तार से लिखते हैं। लेकिन, लोकप्रिय राष्ट्रवादी भावनाओं के दबाव में यह जल्द ही अपने आधिकारिक और निष्ठावादी मूल से बाहर निकल गई। उपनिवेश-विरोधी भावनाओं और आम जनता की गतिविधियों ने कांग्रेस को उपनिवेशवाद के विरुद्ध खड़े होने तथा जनता के आंदोलनों में नेतृत्व की भूमिका ग्रहण करने हेतु प्रेरित किया।

दत्त द्वारा कांग्रेस और राष्ट्रवादी आंदोलन के वर्गीय (class-based) आधार में समय के साथ होने वाले परिवर्तन के आधार पर विश्लेषण किया गया। उनके विश्लेषण में भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन अपने प्रारंभिक चरण में उच्च पूँजीपति वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करता था जिसमें 'भूमिपतियों में प्रगतिवादी, नए औद्योगिक पूँजीपति तथा सुसंपन्न बुद्धिजीवी शामिल थे'। यह भारतीय राष्ट्रवाद तथा कांग्रेस का उदारवादी चरण था। दूसरे चरण में छोटे शहरी पूँजीपति वर्ग ने स्वयं को व्यक्त किया जैसा कि भारतीय राष्ट्रवाद के उग्रवादी चरण से स्पष्ट होता है। तीसरे चरण में भारतीय कृषक वर्ग और कामगार वर्ग ने उभरते हुए आंदोलन में अपनी उपस्थिति को महत्वपूर्ण बना दिया था।

लेकिन, कांग्रेस का नेतृत्व प्रभावी रूप से संपत्ति-धारी वर्ग के हाथ में ही रहा जिन्होंने राष्ट्रवादी आंदोलन की बढ़ती उग्रता को नियंत्रण में रखा और सफलतापूर्वक इसे धनी वर्गों के लिए खतरा बनने से दूर रखा। दत्त विशेष रूप से गाँधी जी के प्रति आलोचक रवैया रखते हैं जिन्हें वह कांग्रेस के भीतर एक प्रमुख रूढ़िवादी प्रभाव मानते थे। उन्होंने गाँधी को 'क्रांति का योनाह तथा अखंड आपदाओं का नायक ... पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधि' कहा है क्योंकि वे 'क्रांतिकारी लहरों के बीच जनता के आंदोलन के नेतृत्व को शांत बनाने' तथा इसे सीमाओं के भीतर ही रखने के साधन ढूँढने की कोशिश करते थे। इस प्रकार असहयोग (Non Cooperation) आंदोलन को वापस ले लिया गया क्योंकि यह भय था कि जनता संपन्न वर्गों का खेल ना बिगाड़ दे। इसी प्रकार 1932 में सविनय अवज्ञा (Civil Disobedience) आंदोलन को भी अचानक तथा रहस्यमय ढंग से वापस ले लिया गया, उस क्षण जब यह अपनी ऊँचाई पर था। दत्त ने इसे कांग्रेस का दोहरा चरित्र कहा हैः एक ओर तो कांग्रेस जनता के आंदोलन के नेतृत्व की भूमिका ग्रहण किए हुए थी वहीं दूसरी ओर इसने औपनिवेशिक सरकार के साथ सहयोग करते हुए संपत्तिशाली वर्गों की रक्षा हेतु बढ़ती हुई आक्रामकता को सीमित करने तथा कभी-कभी समाप्त करने का प्रयास भी किया।

औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था तथा राष्ट्रवादी आंदोलन का दत्त द्वारा किया गया यह विश्लेषण आने वाले काफ़ी लंबे समय तक भारतीय मार्क्सवादी इतिहासलेखन के लिए आधारभूत वाक्यों की तरह सिद्ध हुआ और इसने बाद के कई मार्क्सवादी इतिहासकारों को विभिन्न रूपों में प्रभावित किया।

19.3.2 डी. डी. कोसांबी

डी. डी. कोसांबी को अग्रणी मार्क्सवादी इतिहासकार माना जाता है, विशेष रूप से प्राचीन भारतीय इतिहास के संबंध में। रोमिला थापर का यह तर्क है कि कोसांबी ने भारतीय इतिहासलेखन के क्षेत्र में वास्तव में एक 'क्रांतिकारी बदलाव' (paradigm shift) पैदा किया। उनके अनुसार इस प्रकार के क्रांतिकारी परिवर्तन इससे पहले जेम्स मिल तथा विंसेंट स्मिथ द्वारा प्रस्तुत हुए थे। जहाँ मिल ने भारतीय इतिहास को तीन भागों – हिंदू, मुस्लिम और ब्रिटिश – में बाँटा था जिसे वह सभ्यता-संबंधी विभाजन समझता था, विंसेंट स्मिथ ने मुख्यतः कालक्रम के साथ-साथ वंश-केंद्रित इतिहास पर बल दिया। जहाँ मिल ने भारतीयों, विशेषकर हिंदू सभ्यता, की कड़े शब्दों में आलोचना की, स्मिथ ने सामान्यतः अपने को सही और ग़लत के निर्णय से दूर रखा तथा कालक्रम से बंधे हुए वंशानुगत आख्यानों तक स्वयं को सीमित रखा।

कोसांबी की इतिहास की दृष्टि बिल्कुल ही भिन्न थी। उन्होंने मिल के धार्मिक काल-विभाजन और स्मिथ के वंशानुगत कालक्रम का अनुसरण करने वाले विवरण को पूर्णतः नकार दिया। वह राजनीतिक इतिहास को सतही मानते थे। इसके बजाय उन्होंने इस पर बल दिया कि 'समाज को उत्पादन के बंधन आपस में एकजुट रखते हैं'। इस प्रकार उनके लिए इतिहास 'कालक्रम की व्यवस्था में उत्पादन की पद्धतियों और संबंधों में होने वाले उत्तरोत्तर विकास की प्रस्तुति है'। यह, उनके अनुसार, एकमात्र ज्ञात परिभाषा है जो लेखन-पूर्व समाजों, जिन्हें सामान्यतः प्राक्-इतिहास कहा जाता है, के इतिहास पर उचित व तर्कसंगत विचार करती है। इसके अतिरिक्त वे कहते हैं कि इतिहास को वर्गों के बीच संघर्ष की रूपरेखा में देखना चाहिए। 'एक वर्गीकृत समाज में इतिहास के समुचित अध्ययन का अर्थ उच्च स्थान पर आसीन वर्गों के हितों तथा शेष जनता के हितों के बीच अंतरों के विश्लेषण से है।'

वह कहते हैं कि इतिहास के प्रति यह दृष्टिकोण 'द्वंद्वात्मक भौतिकवाद (dialectical materialism) है जिसे इसके प्रतिपादक के नाम से मार्क्सवाद भी कहा जाता है'। लेकिन, कोसांबी मार्क्सवाद के अनुप्रयोग में काफ़ी लचीला रुख रखते हैं। उन्होंने इस पर बल दिया है कि मार्क्सवाद आर्थिक

निर्धारणवाद, जैसा कि इसके विरोधी इसे अक्सर समझ लेते हैं, से कहीं अधिक है। वह मूलतः मार्क्सवाद को एक ऐसी पद्धति के रूप में देखते हैं जिसे भारतीय इतिहास तथा समाज के अध्ययन में लाभकारी ढंग से उपयोग में लाया जा सकता है। उन्होंने भारतीय इतिहास तथा समाज के प्राचीन समय से ही विश्लेषण के लिए तुलनात्मक पद्धतियों और अंतःविषय (interdisciplinary) दृष्टिकोण को अपनाया था। उनके शोध के परिणाम उनकी चार प्रमुख पुस्तकों में प्रकाशित हुए थेः *एन इंट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ़ इंडियन हिस्ट्री* (1956), *एग्ज़ासपरेटिंग एसेज़ः एक्सरसाइज़ इन द डायलेक्टिकल मेथड* (1957), *मिथ एंड रियैलिटीः स्टडीज़ इन द फॉर्मेशन ऑफ़ इंडियन कल्चर* (1962) और *द कल्चर एंड सिविलाइज़ेशन ऑफ़ इंडिया इन हिस्टॉरिकल आउटलाइन* (1965)।

कोसांबी का गैर-हठधर्मी (non-dogmatic) दृष्टिकोण व कार्यप्रणाली उनके द्वारा दो आधारभूत मार्क्सवादी अवधारणाओं – एशियाई उत्पादन पद्धति (Asiatic Mode of Production) तथा दासता (slavery) – को नकारने में प्रकट होता है। उन्होंने भारतीय परिप्रेक्ष्य में सामंतवाद की मार्क्सवादी अवधारणा को तो स्वीकार किया किंतु भारत में अर्द्धदासत्व के अस्तित्व को नकार दिया। इसके बजाय उनका विचार था कि 'भारतीय समाज को जनजाति से जाति की ओर संक्रमण के तौर पर देखा जाना चाहिए'। उनके अनुसार, 'भारतीय इतिहास की संपूर्ण यात्रा जनजातीय तत्वों के सामान्य समाज में मिश्रण को दर्शाती है'। यह 'भारतीय समाज के जाति के रूप में सर्वाधिक विशिष्ट लक्षण की व्याख्या भी करती है'।

लेकिन, साहित्य तथा संस्कृति के विषय में कोसांबी ने आधार (base) तथा अधिसंरचना (superstructure) के परंपरागत मार्क्सवादी दृष्टिकोण को अपनाया था। उनके अनुसार सांस्कृतिक और साहित्यिक सृजन को प्रत्यक्ष रूप से किसी विशेष काल की आर्थिक संरचनाओं से संबंधित किया जा सकता है। इस प्रकार वह तर्क देते हैं कि *भगवद् गीता* की शिक्षाओं की केवल उस सामंतीय समाज की एक रचना के रूप में व्याख्या की जा सकती है जिसमें इसकी उत्पत्ति हुई थी। उनके लिए *गीता* सामंतीय शासक वर्गों की विचारधारा की शिक्षा देती है जिसमें 'निजी निष्ठा के ऐसे सिलसिले पर बल दिया गया है जो अनुचरों को मुखिया से, काश्तकार को भूस्वामी से तथा सामंत को राजा से बांधती है'। कोसांबी, इस प्रकार, भक्ति आंदोलन को सामंतीय विचारधारा का उत्पाद मानते हैं जिसमें ईश्वर के प्रति निष्ठा का उपदेश दिया गया है। सांसारिक अर्थों में इसका अभिप्राय राजाओं और शासकों के प्रति निष्ठा तथा भक्ति से है (उपाध्याय में उद्धृत, 2016: 489-94)।

19.3.3 बिपन चंद्र

बिपन चंद्र आधुनिक भारत और भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन के एक प्रमुख इतिहासकार हैं। वह आर. पी. दत्त के राष्ट्रवादी आंदोलन पर विचार से असहमति रखते हैं तथा उन्होंने दत्त के विचारों की महत्वपूर्ण आलोचना प्रस्तुत की। अपनी शुरुआती पुस्तक *द राइज़ एंड ग्रोथ ऑफ़ इकॉनॉमिक नेशनलिज़्म इन इंडिया* (1966) में बिपिन चंद्र ने यह तर्क दिया है कि विचारों को आर्थिक आधार का प्रत्यक्ष प्रतिबिंब नहीं समझना चाहिए। उनके मत में विचारों की एक निश्चित स्वायत्तता होती है और वे किसी क्रिया या परिवर्तन के वाहक बन सकते हैं। इसके अतिरिक्त किसी समाज में बौद्धिक जन उस वर्ग के हितों से सापेक्षिक स्वतंत्रता रखते हैं जिसमें उनका जन्म हुआ होता है। उन्होंने इस पर बल दिया है कि बुद्धिजीवियों के कृत्यों की मात्र उनकी उत्पत्ति के वर्ग के आधार पर व्याख्या करना 'निपट क्रूर यांत्रिक भौतिकवाद' होगा। इस प्रकार चंद्र के अनुसार बुद्धिजीवियों के रूप में भारतीय राष्ट्रवादी नेता उन विशेष वर्गों के संकीर्ण हितों से ऊपर थे जिनमें उनका जन्म हुआ था। लेकिन, यह सत्य है कि वे निश्चित वर्गीय हितों का प्रतिनिधित्व भी करते थे किंतु यह उनके जन्म से संबंधित वर्गों के हित नहीं थे। उन्होंने वर्गीय हितों का प्रतिनिधित्व विचारधारात्मक स्तर पर किया था न कि निजी लाभ के लिए। वह तर्क देते हैंः

> दुनिया भर के तथा समस्त इतिहास के बुद्धिजीवियों के समान श्रेष्ठ और ईमानदार भारतीय विचारक तथा बुद्धिजीवी भी 19वीं शताब्दी के दार्शनिक थे तथा किसी दल या वर्ग के नुमाइंदे नहीं थे। यह सत्य है कि वह वर्ग तथा समूह से ऊपर नहीं थे और व्यवहारतः किसी ठोस वर्ग या समूह के हितों का प्रतिनिधित्व करते थे किंतु जब वे किसी वर्ग या समूह के हितों का प्रतिनिधित्व करते थे वे ऐसा विचारधारा के प्रिज़्म (prism) के माध्यम से करते थे न कि प्रत्यक्ष रूप में उस वर्ग या समूह के सदस्यों या आज्ञाकारी सेवकों के रूप में।

इस प्रकार आरंभिक राष्ट्रवादी नेताओं के आर्थिक विचार तथाकथित नरमपंथियों/उदारवादियों (moderates) और अतिवादियों ('extremists'), दोनों, के विचारधारात्मक रूप से पूँजीवादी प्रवृत्तियों को प्रदर्शित करते थे। इसका मतलब यह है कि 'आर्थिक जीवन के लगभग प्रत्येक पहलू में वे सामान्य रूप से पूँजीवादी संवृद्धि तथा विशेष रूप से औद्योगिक पूँजीवादियों के हितों का पोषण करते थे'। लेकिन, इसका मतलब यह नहीं है कि वे पूँजीवादियों के निजी हितों के पक्ष में काम कर रहे थे बल्कि मात्र यह है कि एक सामान्य स्तर पर वे भारत का विकास पूँजीवादी ढंग से होने की आकांक्षा रखते थे। उनका यह मानना था कि 'पूँजीवादी ढंग का औद्योगिक विकास ही आर्थिक क्षेत्र में देश के पुनर्निर्माण का एकमात्र तरीका है, या दूसरे शब्दों में, उस समय के औद्योगिक पूँजीवादी वर्गों के हित वस्तुनिष्ठ रुप से प्रमुख राष्ट्रीय हित के साथ सहवर्ती थे'।

यह भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन का एक महत्वपूर्ण और भिन्न विवेचन है। उन्होंने दत्त की इस आलोचना को और भी विकसित किया। अपनी पुस्तक *नेशनलिज़्म एंड कोलोनियलिज़्म इन मॉडर्न इंडिया* (1979) में वह तर्क देते हैं कि राष्ट्रवादी नेताओं का आधारभूत उद्देश्य आधुनिक पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की संवृद्धि को प्रोत्साहित करने हेतु साम्राज्यवाद-विरोधी विचारधारा को आकार देना व ठोस स्वरूप प्रदान करना और अंततः एक व्यापक अखिल भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का निर्माण करना था। अपनी बात से वे अपनी पुस्तक *इंडियाज़ स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस 1857-1947* (1988) में परंपरागत मार्क्सवादी विचार से और अधिक दूर हो जाते हैं और राष्ट्रवादी आंदोलन के अध्ययन हेतु ग्राम्शी (Gramsci) के दृष्टिकोण को अपनाते हैं। इसमें राष्ट्रवादी नेताओं की रणनीति को वे उपनिवेशवाद के विरुद्ध ग्राम्शी द्वारा परिकल्पित 'स्थिति के संघर्ष' के तौर पर देखते हैं जिसमें लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु एक दीर्घकालिक संघर्ष चलाया जाता है। वे कहते हैं:

> यह भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन ... एकमात्र ऐसा आंदोलन है जहाँ व्यापक रूप से ग्राम्शी के 'स्थिति के संघर्ष' की सैद्धांतिक परिकल्पना को सफलतापूर्वक व्यवहार में लाया गया; जहाँ राज्य-शक्ति को किसी एक विशेष ऐतिहासिक पल में क्रांति से छीन नहीं लिया गया बल्कि नैतिक, राजनीतिक और विचारधारा के स्तर पर एक दीर्घकालिक लोकप्रिय संघर्ष के माध्यम से हासिल किया गया; जहाँ प्रभुत्व-विरोधी संसाधनों को प्रगतिवादी चरणों में कई वर्षों तक निर्मित किया गया; जहाँ संघर्ष के चरणों के बीच में निष्क्रियता के चरण भी वैकल्पिक रूप से आते रहे।

चंद्र ने राष्ट्रवादी आंदोलन की परिकल्पना एक सर्व-वर्गीय आंदोलन के रूप में की है जो पूर्ण रूप से समावेशी था तथा आंदोलन को प्रभावित करने के लिए किसी भी वर्ग को अवसर और स्थान प्रदान करता था। इसके अतिरिक्त वह कहते हैं कि कांग्रेस जो कि राष्ट्रीय आंदोलन का सबसे महत्वपूर्ण संगठन था और 'जिसने 1885 से 1947 के बीच इस संघर्ष का नेतृत्व किया था वह कोई दल नहीं था बल्कि एक आंदोलन था'।

वह कई इतिहासकारों तथा भारत में इतिहास लेखन की प्रवृत्तियों की आलोचना करते हैं कि वे यह नहीं समझ सके कि औपनिवेशिक भारत में मुख्य अंतर्विरोध भारतीय जनता तथा ब्रिटिश उपनिवेशवाद के बीच था। वर्गों, समूहों तथा समुदायों के बीच अंतर्विरोध अपनी जगह थे किंतु इतने महत्वपूर्ण नहीं थे। इस प्रकार कहें तो बिपन चंद्र भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के संबंध में परंपरागत मार्क्सवादी निर्वचन को संशोधित करते हैं और एक नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं।

19.3.4 इरफ़ान हबीब

इरफ़ान हबीब भारत के प्रमुख इतिहासकारों में हैं जिनका विशेष ज्ञान तो मध्यकालीन इतिहास का है किंतु उन्होंने भारतीय अतीत के सभी कालों पर उतनी ही दक्षता से लिखा है जिसमें प्राक्-ऐतिहासिक अतीत भी शामिल है। भारतीय इतिहास की अन्य शाखाओं की तरह मध्यकालीन भारत ने भी कई मार्क्सवादी इतिहासकारों को आकर्षित किया। नूरुल हसन, सतीश चंद्र, इरफ़ान हबीब, अतहर अली तथा हरबंस मुखिया उनमें से कुछ प्रमुख इतिहासकार हैं। इन्होंने मध्यकालीन भारतीय समाज, राजव्यवस्था और अर्थव्यवस्था का गहन अध्ययन किया है। इन इतिहासकारों के बीच इरफ़ान हबीब को विशेष रूप से महत्वपूर्ण समझा जाता है। मुग़ल अर्थव्यवस्था का उनका अध्ययन *एग्रेरियन सिस्टम ऑफ़ मुग़ल इंडिया* (1963) को इस काल के संबंध में सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों में माना जाता

है। इस पुस्तक में वह तर्क देते हैं कि उत्तर-मध्यकाल में आधारभूत अंतर्विरोध केंद्रीकृत शासक वर्ग (राज्य) तथा कृषक वर्ग के बीच था। अन्य प्रकार के अंतर्विरोध राज्य तथा *ज़मींदारों* के बीच, अपृश्यों तथा शेष समाज के बीच, जनजातियों और अतिक्रमणकारी कृषिगत जातीय समाज के बीच थे। हबीब के अनुसार, 'इन सभी में कर-राजस्व के मुहिम को प्रमुख संचालक शक्ति माना जा सकता है। भू-राजस्व व्यापक नगरीय क्षेत्र का पोषक था किंतु उच्च संग्रहण के लिए पड़ने वाले दबाव ने देश को बदहाल कर दिया था, *ज़मींदारों*, जिनका अधिशेष में हिस्सा प्रभावित हो रहा था, को नाराज़ कर दिया था और परिणामस्वरूप जिसने किसानों को विद्रोह के लिए प्रेरित किया'।

मध्यकालीन भारतीय इतिहास पर इस पुस्तक का अनुसरण उनके अन्य महत्वपूर्ण योगदानों जैसे *एटलस ऑफ़ द मुग़ल एंपायर* और उनके द्वारा संपादित पुस्तकों *केंब्रिज इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ़ इंडिया* का प्रथम भाग (1982) ने किया। इसके अतिरिक्त उनकी विभिन्न पुस्तकें और आलेख, जिनमें *कास्ट एंड मनी इन इंडियन हिस्ट्री* (1987), *इंटरप्रेटिंग इंडियन हिस्ट्री* (1988) और *एसेज़ इन इंडियन हिस्ट्रीः टुवर्ड्स अ मार्क्सिस्ट परसेप्शन* (1995) शामिल हैं, जो भारतीय इतिहास के विभिन्न कालों का अन्वेषण तथा उन पर टिप्पणी करते हैं।

बोध प्रश्न-1

1) मार्क्सवादी इतिहासलेखन के प्रमुख विचारों की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

2) किन्हीं दो भारतीय मार्क्सवादी इतिहासकारों के विचारों तथा कृतियों पर लेख लिखिए।

.....

.....

.....

19.4 सबाल्टर्न इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताएँ

सबाल्टर्न इतिहासलेखन का उदय *सबाल्टर्न स्टडीज़* संस्करणों की एक श्रृंखला से हुआ था जिसका शुरुआती तौर पर रणजीत गुहा द्वारा संपादन किया गया था। इस श्रृंखला की शुरुआत 1982 में हुई तथा 2005 तक इसके 12 संस्करण प्रकाशित हो चुके थे। पहले छः संस्करणों का संपादन इस परियोजना के संस्थापक रणजीत गुहा द्वारा किया गया था। इसके बाद के प्रत्येक संस्करण का संपादन इस समूह से संबंध रखने वाले पृथक संपादकों द्वारा किया गया था। बीस वर्षों से भी अधिक के इस समय में भारतीय इतिहासलेखन की यह बौद्धिक परियोजना अत्यंत प्रभावशाली बन गई और इसका प्रभाव बना रहा है।

इसके समर्थकों द्वारा *सबाल्टर्न स्टडीज़* को इतिहास लेखन की नई विचारधारा एवं कार्यक्षेत्र की शुरुआत के रूप में घोषित किया गया जो भारतीय इतिहास लेखन की तब तक मौजूद समस्त प्रवृत्तियों से भिन्न था। विद्वानों का एक समूह, जो भारत में समकालीन इतिहास लेखन का आलोचक था, भी इससे जुड़ा और इसके संस्करणों में उन्होंने भी योगदान दिया। कुछ अन्य भी थे जो केंद्रीय समूह का हिस्सा नहीं थे लेकिन उन्होंने इस श्रृंखला के लिए आलेख लिखे। शुरुआत में इसे केवल तीन संस्करणों की श्रृंखला में प्रकाशित करने की योजना थी किंतु इसके साथ अधिकाधिक इतिहासकारों के जुड़ने से यह लंबे समय तक चलता रहा। जिन विषय-वस्तुओं को इसमें शामिल किया गया वे भी विभिन्न दिशाओं में विस्तृत होती गईं जिनमें गैर-भारतीय, तृतीय विश्व (Third World) के विषय भी शामिल थे। शुरुआती रूप से इसके समर्थक ग्राम्शी तथा पश्चिम के मार्क्सवादी सामाजिक इतिहासकारों से प्रभावित थे। बाद के समय में इनमें से कई उत्तर-आधुनिकतावाद तथा उत्तर-उपनिवेशवाद के प्रभाव में भी आए। इस सम्पूर्ण काल के सबाल्टर्न इतिहास लेखन के प्रमुख तर्कों को इस प्रकार सारबद्ध किया जा सकता हैः

- अब तक अस्तित्व में रहा समस्त भारतीय इतिहासलेखन दो तरह के अभिजात्यवाद से ग्रस्त रहा है – औपनिवेशिक अभिजात्यवाद तथा राष्ट्रीय पूँजीपति अभिजात्यवाद।

- सबाल्टर्न इतिहासकार आम जन, जैसे किसानों तथा अन्य निम्न या शोषित वर्गों, के दृष्टिकोण से इतिहास लिखकर भारतीय इतिहास लेखन की धारा की दिशा को बदलना चाहते थे।
- अभिजात्य वर्ग और उसकी विचारधारा की आलोचना को इस परियोजना का आरंभ बिंदु माना जाता था।
- इन इतिहासकारों का लक्ष्य सबाल्टर्न (अर्थात निम्नपदस्थ) वर्गों को विचारशील तथा सक्रिय अभिकर्ताओं के रूप में प्रस्तुत करना था, बजाय कि मात्र निष्क्रिय कर्ताओं के रूप में। यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि उनके कृत्यों के विषय में स्वतःस्फूर्त जैसा कुछ भी नहीं था और इन वर्गों ने सचेतन निर्णय लिए और अपने कृत्यों, जिनमें उनके विद्रोह शामिल थे, के लिए योजनाएँ बनाईं।
- दृढ़ता के साथ यह भी कहा गया कि राजनीतिक, विचारधारात्मक और सामाजिक स्तर पर अभिजात्य और सबाल्टर्न दो पृथक प्रक्षेत्रों के रूप में कार्यरत रहते हैं। जिस प्रक्षेत्र में सबाल्टर्न वर्ग मौजूद थे, विचार और कार्य कर रहे थे वह स्वायत्त प्रक्षेत्र था तथा वर्चस्वशाली वर्गों की भूमिका तथा प्रभाव इस प्रकार के प्रक्षेत्र में अपेक्षाकृत सीमित ही थे।
- संगठनात्मक स्तर पर भी सबाल्टर्न राजनीति स्वतंत्र थी तथा परंपरागत सामाजिक संस्थाओं जैसे जाति, नातेदारी, जनजातीय तंत्रों, इत्यादि पर निर्भर करती थी।
- सबाल्टर्न वर्गों की चेतना परंपरागत धार्मिक विचारधारा से प्रेरित थी क्योंकि औपनिवेशिक विचारधारा और पूँजीवादी राष्ट्रवादी विचारधारा, दोनों, ही सबाल्टर्न चेतना पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में असफल रहे थे।
- जहाँ अभिजात्य लामबंदी (mobilisation) लंबवत (vertical) एवं पदानुक्रमिक (hierarchical) थी, सबाल्टर्न लामबंदी क्षैतिज (horizontal) तथा समतापूर्ण थी। इसके अतिरिक्त जहाँ अभिजात्य लामबंदी विधि-सम्मत (legalistic) और शांत किस्म की थी, सबाल्टर्न लामबंदी अपेक्षाकृत हिंसक थी (उपाध्याय, 2016: 541)।

ये सबाल्टर्न इतिहासलेखन के प्रमुख सूत्रीकरण हैं जो सबाल्टर्न अध्ययन के अधिकांश आलेखों में किसी न किसी रूप में मौजूद रहे हैं। अब हम कुछ महत्वपूर्ण सबाल्टर्न इतिहासकारों और उनकी कृतियों की चर्चा करेंगे।

19.5 कुछ महत्वपूर्ण सबाल्टर्न इतिहासकार

उन विद्वानों, जिन्होंने *सबाल्टर्न स्टडीज* के लिए लिखा और सबाल्टर्न इतिहासलेखन के प्रभाव में अपनी कृतियों की रचना की, की संख्या बहुत अधिक है। उनकी संख्या भी अच्छी-खासी है जो सबाल्टर्न विचारधारा के साथ इस लंबे काल में खड़े रहे। इन सब की चर्चा करना यहाँ संभव नहीं है। निम्नलिखित उप-भागों में हम केवल चार सबाल्टर्न इतिहासकारों की चर्चा करेंगे।

19.5.1 रणजीत गुहा

रणजीत गुहा *सबाल्टर्न स्टडीज* परियोजना की प्रमुख प्रेरक शक्ति रहे हैं। इसकी शुरुआत से ही वह भारतीय इतिहास लेखन की अन्य प्रवृत्तियों के प्रति आलोचक रवैया रखते थे। *सबाल्टर्न स्टडीज* के पहले संस्करण में अपनी 'भूमिका' (preface) में उन्होंने घोषणा की कि 'भारतीय राष्ट्रवाद का इतिहास लेखन लंबे समय तक अभिजात्यवाद-उपनिवेशवादी अभिजात्यवाद तथा पूँजीपति राष्ट्रवादी अभिजात्यवाद के प्रभाव में रहा है'। उनका कहना था कि औपनिवेशिक इतिहासलेखन तथा राष्ट्रवादी इतिहासलेखन, दोनों, में बहुत सी समानताएँ थीं। इन दोनों की यह प्रमुख विशेषता थी कि इन्होंने आम जनता की राजनीति को अनदेखा किया। इन सभी प्रवृत्तियों से संबंध रखने वाले इतिहासकारों द्वारा जनता की राजनीति को अपने साध्य की पूर्ति हेतु उपयोग किया गया। इस प्रकार औपनिवेशिक, राष्ट्रवादी तथा मार्क्सवादी विमर्श (discourse) 'विनियोजन का एक ऐसा कृत्य माना गया जिसने विद्रोही को एक सचेतन अभिकर्ता के रूप में स्वयं के इतिहास से ही बहिष्कृत कर दिया था' (उपाध्याय, 2016: 549)। इतिहास लेखन के पुराने स्वरूपों पर प्रतिक्रिया करते हुए गुहा ने कहा कि सबाल्टर्न इतिहासकारों को जो चीज़ साथ में लाई है वह इस अभिजात्यवाद के प्रति विरोध है:

> हम वास्तव में इतिहासलेखन और सामाजिक विज्ञान के प्रचलित अधिकांश अकादमीय तौर-तरीकों, इनके सबाल्टर्न को स्वयं की नियति का निर्माण करने वाले के रूप में स्वीकार करने में असफल रहने के कारण, के प्रति विरोध रखते हैं। यह आलोचना इस परियोजना में केंद्रीय स्थान रखती है। अभिजात्यवादी आदर्श, जो दक्षिण एशियाई अध्ययनों में भली-भाँति घर कर चुका है, के विरोधी के रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करने के अतिरिक्त कोई दूसरा तरीका नहीं है। नकारात्मकता, इस प्रकार, हमारी इस परियोजना के अस्तित्वमान होने का कारण और साथ ही इसका रचनात्मक सिद्धांत भी है।
>
> **गुहा, *सबाल्टर्न स्टडीज़*, संस्करण III, 1984: vii**

अपनी पुस्तक *एलीमेंट्री आसपेक्ट्स ऑफ़ पैज़ेंट इन्सर्जेन्सी* (1983) में गुहा यह तर्क देते हैं कि 'किसानों के विद्रोह के संबंध में समस्त ऐतिहासिक विमर्श, इस प्रकार, अपनी शुरुआत सत्ता के विमर्श के रूप में करता है। अतीत के अपने निरूपण में यह रैखिक और धर्मनिरपेक्ष है, बजाय कि चक्रीय और मिथकीय होने के। इनमें राज्य के अस्तित्व के औचित्य के अतिरिक्त कुछ भी अन्य उद्देश्य नहीं है'। इसी प्रकार के तर्क से यह राज्य का विमर्श भी है। इस प्रकार 'राज्य की सुरक्षा को किसानों के विद्रोह की केंद्रीय समस्या बनाकर इसमें इस विद्रोह को उपनिवेशवाद के काल में एक तत्व मात्र के रूप में आत्मसात कर लिया गया है। दूसरे शब्दों में, इतिहास के निर्माता के रूप में किसान की पहचान स्वयं के अधिकार में नकार दी गई, उस परियोजना के संदर्भ में भी जो उसकी स्वयं की थी' (*एलीमेंट्री आसपेक्ट्स ऑफ़ पैज़ेंट इन्सर्जेन्सी*, पृ. 3)।

गुहा के अनुसार ये विमर्श इतने अधिक अभिजात्यवादी थे और धर्मनिरपेक्षता तथा राज्यवादी विचारों पर केंद्रित थे कि वह 'विद्रोहियों की चेतना में धार्मिक तत्व के साथ सहज होने के अनिच्छुक थे'। इतिहास के अनुसार विद्रोही की चेतना विशेष रूप से धार्मिक पदों में अभिव्यक्त हुई थी और 'उपद्रव के विषय में केवल धार्मिक चेतना के रूप में बात करने के ... अलावा कोई अन्य तरीका सम्भव नहीं है' (*एलीमेंट्री आसपेक्ट्स ऑफ़ पैज़ेंट इन्सर्जेन्सी*, पृ. 38, 34)। किसान विद्रोहियों पर अपनी स्वयं की विचारधारा थोपने की प्रक्रिया में इन अभिजात्यवादी ऐतिहासिक विमर्शों ने पूर्ण रूप से इन विद्रोहियों की वास्तविक विचारधारा को अनदेखा कर दिया था।

19.5.2 पार्था चटर्जी

सबाल्टर्न इतिहासकारों के बीच एक अन्य अग्रणी विद्वान पार्था चटर्जी उत्तर-आधुनिकतावाद और उत्तर-उपनिवेशवाद के विचारों से इस परियोजना की शुरुआत से ही प्रभावित थे। अपनी प्रभावशाली पुस्तक *नैशनलिस्ट थॉट एंड कोलोनियल वर्ल्ड* (1986) में उन्होंने एडवर्ड सईद के उत्तर-औपनिवेशिक ढाँचे का उपयोग किया जिसमें औपनिवेशिक शक्ति-ज्ञान को अत्यधिक प्रभावशाली और वर्चस्वशाली बताया गया है। अपनी बाद की पुस्तक *द नेशन एंड इट्स फ़्रैग्मेंट्स* (1993) में उन्होंने इस विश्लेषण को और आगे बढ़ाया है।

अपनी पुस्तक *नैशनलिस्ट थॉट* में चटर्जी यह तर्क देते हैं कि उत्तर-प्रबोधन युग के यूरोपीय ज्ञान के रूप इतने शक्तिशाली थे कि उन्होंने कई राष्ट्रवादी विचारकों को यूरोपीय विद्वानों का अनुयायी मात्र बना दिया था। बहरहाल, कुछ निश्चित तरीकों से वह गाँधी के विचारों को स्वतंत्र और उत्तर-प्रबोधन विचारों के सैद्धांतिक दायरे से बाहर मानते हैं। उनके मत में गाँधी के विचार एक अंतरनिष्ठ रूप से 'कृषक-सामुदायिक' चरित्र रखते थे। गाँधी को छोड़कर अन्य सभी राष्ट्रवादी विचारक गहरे रूप से औपनिवेशिक विमर्शों का अनुकरण करने में ही संलग्न थे। उदाहरण के लिए, बंकिम चंद्र तथा नेहरू राष्ट्रवाद के संबंध में यूरोपीय विचारों का अनुसरण करते थे।

अपनी कृति *द नेशन एंड इट्स फ़्रैग्मेंट्स* में चटर्जी ने यह तर्क दिया है कि उपनिवेशवाद-विरोधी राष्ट्रवाद भारत में अपने यूरोपीय समकक्ष राष्ट्रवाद की नकल मात्र नहीं था, इसने स्वयं का रास्ता तैयार किया और 'साम्राज्यवादी शक्ति के साथ राजनीतिक संघर्ष शुरू करने से पहले ही औपनिवेशिक समाज के भीतर अपना स्वयं का एक संप्रभु प्रक्षेत्र सृजित किया'। उनके अनुसार दो पृथक प्रक्षेत्रों की रचना हुई। आंतरिक प्रक्षेत्र में अध्यात्म पर बल दिया गया जबकि भौतिकता को बाहरी प्रक्षेत्र के लिए उचित माना गया। आंतरिक और आध्यात्मिक क्षेत्र को औपनिवेशिक शक्ति के प्रभाव से दूर रखा गया किंतु बाह्य प्रक्षेत्र में यूरोपियों तथा औपनिवेशिक अधिकारियों के साथ निरंतर अंतःक्रिया तथा

धन, शक्ति और नवीन विज्ञान व प्रौद्योगिकी के अनुशीलन को महत्वपूर्ण गतिविधि माना गया। वह तर्क देते हैं कि यह 'आंतरिक प्रक्षेत्र था जहाँ से भारतीय राष्ट्रवाद ने अपना जीवन प्राप्त किया था और यहीं एक आधुनिक राष्ट्रीय संस्कृति का सृजन किया गया जो आधुनिक तो थी पर पश्चिमी नहीं थी। यहीं यह हुआ कि राष्ट्र को ... एक काल्पनिक समुदाय के रूप में अस्तित्व में लाया गया' (उपाध्याय, 2016: 552-54)।

19.5.3 ज्ञानेंद्र पांडे

ज्ञानेंद्र पांडे सबाल्टर्न इतिहासकारों में एक महत्वपूर्ण इतिहासकार हैं जिनका लेखन *सबाल्टर्न स्टडीज* के विकासक्रम के विभिन्न चरणों में विस्तृत है। अपने एक शुरुआती आलेख 'पैज़ेंट रेवोल्ट एंड इंडियन नैशनलिज़्म, 1919-1922' में उन्होंने यह तर्क दिया था कि अवध के ग्रामीण क्षेत्र में किसानों का आंदोलन राष्ट्रवादी आंदोलन से स्वायत्त, मुक्त एवं एक भिन्न आंदोलन के रूप में अस्तित्व में था। इस प्रकार वे गाँधीवादी असहयोग आंदोलन से पहले ही और स्वतंत्र रूप से अस्तित्व में उठ खड़े हुए थे। उनके अनुसार शहरी राष्ट्रवादी नेताओं के मुकाबले स्थानीय शक्ति के ढाँचे की और उपनिवेशवाद के साथ इसके सहयोग के संबंध में किसानों की समझ अधिक परिष्कृत थी। यह किसान आंदोलन अधिक उग्र स्वरूप लिए हुए थे। लेकिन, किसानों का उग्रवाद तब सीमित हो गया जब कांग्रेस ने इस आंदोलन पर नियंत्रण कर लिया और आंदोलन पर स्वयं के कार्यक्रम को लाद दिया था।

अपने बाद के लेखन में पांडे ने विस्तारपूर्वक उसका अन्वेषण किया है जिसे वे औपनिवेशिक समय में संप्रदायवाद की निर्मिती कहते हैं। अपने कई आलेखों और किताबों में उन्होंने उत्तर-भारत में संप्रदायवाद के विकास और प्रसार का विश्लेषण किया है। उत्तर प्रदेश और बिहार में गौ-रक्षा के आंदोलनों के अपने विश्लेषण में वह लोगों के विभिन्न वर्गों, जैसे छोटे *जमींदारों*, शिल्पकारों, किसानों और अन्य कई कृषक जातियों तथा समूहों, की खराब होती स्थिति में इसके मूल को स्थापित करते हैं। उन्होंने यह तर्क दिया कि ऊपर की ओर सामाजिक गतिशीलता के अपने प्रयास में कई जातियों ने संप्रदायवादी दुष्प्रचार का सहारा लिया जिसने निश्चित तौर पर समाज में उनके आनुष्ठानिक दर्जे को ऊपर उठाया। यहाँ तक कि मुस्लिमों में भी, जैसा कि पांडे ने *सबाल्टर्न स्टडीज* के तीसरे संस्करण में अपने निबंध 'क़स्बा मुबारकपुर' पर शोध किया है, *जमींदारों* की बढ़ती दरिद्रता तथा गरीब जुलाहों के सामाजिक और धार्मिक दावों के साथ भी यही प्रक्रिया काम कर रही थी।

अपनी पुस्तक *कंस्ट्रक्शन ऑफ़ कम्युनलिज़्म इन कोलोनियल नॉर्थ इंडिया* (1989) में पांडे इस पर बल देते हैं कि संप्रदायवाद को एक सुसंगत विचारधारा बनाने के लिए औपनिवेशिक विमर्श (discourses) ज़िम्मेदार थे। संप्रदायों के बीच होने वाले साधारण से झगड़ों को भी हिंदुओं और मुस्लिमों के बीच सांप्रदायिक दंगों के रूप में पेश किया जाता था। उनके अनुसार औपनिवेशिक विमर्श का यह प्रयास था कि 'यहाँ की जनसंख्या का विकृत चरित्र स्थापित किया जाए और ''हिंदुओं'' तथा ''मुस्लिमों'' के बीच आधारभूत वैपरीत्य स्थापित किया जाए'। इस प्रकार संपूर्ण पूर्व-औपनिवेशिक इतिहास को 'मूल रूप से अंधकारमय और अनुशासनहीन' तथा विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच संघर्ष के रूप में वर्णित किया गया। उन्होंने यह भी तर्क दिया है कि भारतीय अतीत का अंधकारमय चित्रण ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का औचित्य सिद्ध करता था जिसने कानून और व्यवस्था की स्थापना तथा निरंतर झगड़ने वाले समुदायों के बीच शांति की स्थापना की थी।

अपने आलेख 'द प्रोज़ ऑफ़ अदरनेस' (1994) में पांडे ने हिंसा के प्रश्न पर औपनिवेशिक विमर्श का अनुसरण करने के लिए सभी प्रकार के आधुनिकतावादियों, 'धर्मनिरपेक्ष' तथा 'वैज्ञानिक' इतिहासकारों की आलोचना की है। वह तर्क देते हैं कि भीड़ की हिंसा को पागलपन, अतार्किक, कट्टरता तथा असामान्यता के रूप में चित्रित करते हुए इन इतिहासकारों ने विभाजन की हिंसा की वास्तविक प्रकृति को ग़लत रूप में प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार इन घटनाओं को एक संतुलित तरीके से देखा जाना चाहिए और इतिहासकारों को '''हाशिए'' पर स्थित लोगों व संप्रदायों की आवाज़ों स्मृतियों, उनके भुला दिए गए स्वप्नों तथा प्रतिरोध के चिह्नों का पुनरुद्धार करने' की कोशिश करनी चाहिए'।

अपनी अन्य पुस्तक *रिमेंबरिंग पार्टीशन* (2001) में वह उपर्युक्त बिंदुओं को पुनः प्रस्तुत करते हैं और 'अनुचिह्नों' (traces), 'खंडों' (fragments) तथा 'हाशिए (marginal) की आवाज़ों', के अध्ययन की आवश्यकता पर बल देते हैं। वे तर्क देते हैं कि 'हा ाशिए के खंडों व उनकी आवाज़ों का उद्देश्य

वैकल्पिक विचार बिंदुओं, दूसरे दृष्टिकोणें तथा लेखन के अन्य तरीकों को उजागर करना होता है ताकि उन दृष्टिकोणें को समझा और ग्रहण किया जा सके। यहाँ ''खंड'' का उपयोग मात्र ''टुकड़े'' या शब्दकोश के एक पहले से अस्तित्व में रही संपूर्ण इकाई से ''टूटकर अलग हुए हिस्से'' के रूप में नहीं किया गया है बल्कि यह एक ''विचलन करने वाला तत्व'' है। एक ''विचलन'', एक अंतर्विरोध, उस विशेष संपूर्णता, जो बिना आलोचनात्मक हुए इसका समर्थन करते हैं, के आत्म-निरूपण में' (पांडे, *रिमेम्बरिंग पार्टिशन,* 2001: 296)।

19.5.4 दीपेश चक्रवर्ती

दीपेश चक्रवर्ती *सबाल्टर्न स्टडीज* के मूलभूत सदस्यों में से रहे हैं जो सभी मंचों पर इसके आलोचकों के समक्ष ज़ोर-शोर से इसका बचाव भी करते रहे हैं। शुरुआत से ही इन्होंने इतिहास के आर्थिक विवेचन के प्रति असहजता दिखाई थी जिसे मार्क्सवाद के विशेष अनुयायियों द्वारा बढ़ावा दिया जा रहा था। बंगाल के पटसन (jute) कामगारों पर अपने आलेखों तथा पुस्तक में उन्होंने आर्थिक के बजाय सांस्कृतिक पहलुओं पर अधिक बल दिया है। वह यह मानते हैं कि उद्योगपतियों तथा भर्ती करने वाले अभिकर्ताओं के साथ तथा कामगारों के बीच भी एक विशेष प्रकार की संस्कृति थी जिसने एक 'सशक्त प्राक्-पूँजीवादी संस्कृति को आकार दिया जिसमें धर्म, समुदाय, नातेदारी, भाषा तथा अन्य प्राक्-आधुनिक निष्ठाओं के ऊपर अत्यंत बल दिया गया था' (उपाध्याय में उद्धृत, 2016: 558)।

अपनी सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तक *प्रोविंशियलाइज़िंग यूरोप* में वह विश्व में मौजूद रहे पश्चिमी बौद्धिक प्रभुत्व की आलोचना करते हैं जिसने संपूर्ण विश्व में जिस तरह इतिहास लिखा जा रहा है उसे आकार दिया और अभी भी आकार प्रदान करता है। इसका परिणाम ग़ैर-यूरोपीय देशों में देशीय ज्ञान-तंत्रों को हाशिए में धकेल देने में निकला। देशीय स्वरूप के इतिहास की जगह यूरोपीय मॉडल ने ले ली और इस प्रकार यूरोप संपूर्ण धरती पर लिखे जाने वाले इतिहासों का केंद्रीय विषय बन गया। वह मानते हैं कि आधुनिक काल में इतिहास को सार्वभौमिक रूप प्रदान करने की इस चाह का प्रतिरोध किया जाना चाहिए।

वह यद्यपि यह स्पष्ट कर देते हैं कि उनका 'आह्वान सांस्कृतिक सापेक्षतावाद (relativism) या संजाहीन (atavistic), देशीय इतिहास के लिए नहीं है। न ही उनका यह कार्यक्रम आधुनिकता की साधारण सी अस्वीकार्यता है जो कई परिस्थितियों में राजनीतिक रूप से आत्मघाती साबित होगा'। वस्तुतः वह कहते हैं, 'मैं ऐसे इतिहास की आकांक्षा करता हूँ जो अपने वर्णनात्मक ढाँचे में ही सायास स्वयं की दमनकारी रणनीतियों और रीतियों को प्रकट करता हुआ चलता है तथा अपनी उस भूमिका को उजागर करे जो आधुनिक राज्य की परियोजना में मानवीय एकजुटता की अन्य सभी संभावनाओं को आत्मसात करते हुए नागरिकता के आख्यानों का मिश्रण करने में निभाता है' (*प्रोविंशियलाइज़िंग यूरोप,* पृ. 45)।

इसके बजाय वह जिस इतिहास का प्रस्ताव रखते हैं वह 'बहुलतापूर्ण इतिहास' है जो विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोणों के बीच संवाद को बढ़ावा देगा और एक विविधता को गति प्रदान करेगा जो मुख्यधारा के इतिहास की सर्वस्व को समरूप बना देने की प्रवृत्ति का विरोध करेगा।

बोध प्रश्न-2

1) सबाल्टर्न इतिहासलेखन की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं?

.....

.....

.....

2) किन्ही दो सबाल्टर्न इतिहासकारों की रचनाओं की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

19.6 सारांश

मार्क्सवादी तथा सबाल्टर्न इतिहासलेखन, जिनकी हमने इस इकाई में चर्चा की है, शोषितों तथा वंचित वर्गों के पक्ष में आवाज़ उठाने का दावा करते हैं। यह दोनों ही निम्न वर्गों को अनदेखा करने की प्रवृत्ति के कारण विभिन्न प्रकार के औपनिवेशिक तथा राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की आलोचना करते हैं। इतिहास लेखन के ये दोनों प्रकार व रूप भारतीय समाज के अधीनस्थ समूहों को न केवल इतिहास के दायरे में लाने में सफल हुए हैं बल्कि कभी-कभी उन्हें केंद्रीय स्थान भी प्रदान करते हैं। लेकिन, इन दोनों के बीच कुछ निश्चित भिन्नताएँ हैं और दोनों ही एक-दूसरे के प्रति आलोचनात्मक रवैया रखते हैं। जहाँ सबाल्टर्न इतिहासकार मार्क्सवादी इतिहासकारों पर अधीनस्थ वर्गों की यथार्थ वाणी को ध्यान में न रखने का आरोप लगाते हैं वहीं मार्क्सवादी इतिहासकार सबाल्टर्न इतिहासकारों पर एकतरफ़ा/एंकागी चित्र प्रस्तुत करने का आरोप लगाते हैं।

19.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न-1

1) देखें भाग 19.2

2) भाग 19.3 से सहायता लें

बोध प्रश्न-2

1) देखें भाग 19.4

2) देखें भाग 19.5

19.8 संदर्भ ग्रंथ

गुहा, रणजीत, (1983) *एलीमेंट्री आसपैक्ट्स ऑफ़ पैज़ैट इन्सर्जैन्सी* (नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

गुहा, रणजीत, (संपा.) *सबाल्टर्न स्टडीज़*, भाग I तथा III.

उपाध्याय, शशि भूषण, (2016) *हिस्टॉरीयोग्रफ़ी इन द मॉडर्न वर्ल्डः वैस्टर्न एंड इंडियन पेर्सपैक्टिवेस* (नई दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस).

19.9 शैक्षणिक वीडियो

द पैज़ैट, दैन एंड नाओः थर्टी इयर्ज़ ऑफ़ रणजीत गुहाज़ ऐलिमैन्टरी आसपैक्ट्स
https://www.youtube.com/watch?v=YXKyxc6pzb4&t=1011s

डिबेटः मार्क्सिज़्म एंड द लैगेसी ऑफ़ सबौल्टर्न स्टडीज़ – हिस्टॉरिकल मटीरियलिज़्म एन वाई 2013
https://www.youtube.com/watch?v=xbM8HJrxSJ4&t=16s

रिविज़िटिंग नैशनलिस्ट थॉट एंड द कलोनियल वर्ल्डः ए कनवर्सेशन विद पार्था चटर्जी
https://www.youtube.com/watch?v=jaZn9IqPJZg

इन रिट्रौस्पैक्टः सबाल्टर्न स्टडीज़ एंड् फ्यूचर्ज़ पास्ट – दीपेश चक्रबर्ती
https://www.youtube.com/watch?v=YEW-jVr4fJU

मार्जिंस एंड मार्जिनैलिटीज़
https://www.youtube.com/watch?v=SessF1WOWwc

दलित मेमॉयर्सः री-स्क्रिप्टिंग द सबाल्टर्न बॉडी
https://www.youtube.com/watch?v=vVA1NsiTUV0